□ श्री अगरचन्द्र जी नाहटा
[सुप्रसिद्ध साहित्यान्वेषक]

प्राकृत साहित्य की विविधता और विशालता

□

मानव की स्वाभाविक बोलचाल की भाषा का नाम प्राकृत है। यह भाषा देशकाल के भेद से अनेक रूपों और नामों से प्रसिद्ध है। आगे चलकर यह कुछ प्रकारों में विभक्त हो गई और उन्हीं के लिए प्राकृत संज्ञा रूढ़ हो गई। जैसे—अर्धमागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची आदि। बोली के रूप में तो प्राकृत काफी पुरानी है। पर साहित्य उसका इतना पुराना नहीं मिलता। इसलिए उपलब्ध ग्रन्थों में सबसे पुराने 'वेद' माने जाते है, जिनकी भाषा वैदिक-संस्कृत है। भगवान् महावीर और बुद्ध ने जन-भाषा में धर्म प्रचार किया। दोनों ही समकालीन महापुरुष थे और उनका विहार विचरण प्रदेश भी प्रायः एक ही रहा है। पर दोनों की वाणी जिन भाषाओं में उपलब्ध है, उनमें भिन्नता है। पाली नाम यद्यपि भाषा के रूप में प्राचीन नाम नहीं है, पर बौद्ध त्रिपिटकों की भाषा का नाम पाली प्रसिद्ध हो गया। भगवान महावीर की वाणी जो जैन आगमों में प्राप्त है, उसे 'अर्धमागधी' भाषा की संज्ञा दी गई है। क्योंकि मगध जनपद उस समय काफी प्रभावशाली रहा है और उसकी राजधानी **'नालन्दा'** में भगवान् महावीर ने चौदह चौमासे किये। उसके आस-पास के प्रदेश में भी उनके कई चौमासे हुए। इसलिए मागधी भाषा की प्रधानता स्वाभाविक ही है। पर मगध जनपद में भी अन्य प्रान्तों के लोग आते-जाते रहते थे और बस गये थे तथा भगवान् महावीर भी अन्य प्रदेशों में पधारे थे अतः उनकी वाणी सभी लोग समझ सकें, इस कारण मिली-जुली होने से उसको 'अर्धमागधी' कहा गया है। आगे चलकर जैन-धर्म का प्रचार पश्चिम और दक्षिण की ओर अधिक होने लगा तब श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जो ग्रन्थ रचे गये, उनकी भाषा को महाराष्ट्री प्राकृत और दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों की भाषा को 'शौरसेनी' प्राकृत कहा गया। प्राकृत का प्रभाव कई शताब्दियों तक बहुत अच्छा रहा। पर भाषा तो एक विकसनशील तत्त्व है। अतः उसमें परिवर्तन होता गया और पाँचवीं-छठवीं शताब्दी में उसे 'अपभ्रंश' की संज्ञा प्राप्त हुई। अपभ्रंश में भी जैन कवियों ने बहुत बड़ा साहित्य-निर्माण किया है। अपभ्रंश से ही आगे चलकर उत्तर-भारत की सभी बोलियाँ विकसित हुईं। उनमें से राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी में भी प्रचुर जैन-साहित्य रचा गया।

प्राकृत के प्रचार और प्रभाव के कारण ही संस्कृत के बड़े-बड़े कवियों ने जो नाटक लिखे, उनमें जन-साधारण की भाषा के रूप में करीब आधा भाग प्राकृत में लिखा है। कालिदास, भास, आदि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाटक इसके प्रमाण हैं। शिला-लेखों में भी बहुत से लेख प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण मिलते हैं। इससे प्राकृत भाषा के कई रूपों और विकास की अच्छी जानकारी मिल जाती है। यद्यपि प्राकृत में साहित्य-रचना की परम्परा जैसी जैनों में रही, वैसी अन्य किसी धर्म-सम्प्रदाय या समाज में नहीं रही, पर जैनेतर विद्वानों ने भी प्राकृत भाषा के व्याकरण बनाये हैं और कुछ काव्यादि रचनाएँ भी उनकी मिलती हैं। इससे सिद्ध होता है कि संस्कृत का प्रभाव बढ़ जाने पर भी प्राकृत सर्वथा उपेक्षित नहीं हुई और जैनेतर लेखक भी इसे अपनाते रहे।

प्राकृत साहित्य विविध प्रकार का और बहुत ही विशाल है। अभी तक बहुत-सी छोटी-छोटी रचनाओं की तो पूरी जानकारी भी प्रकाश में नहीं आयी है। वास्तव में छोटी होने पर भी ये रचनाएँ उपेक्षित नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इनमें से कई तो बहुत ही सारगर्भित और प्रेरणादायी हैं। बड़े-बड़े ग्रन्थों में जो बातें विस्तार से पायी जाती हैं, उनमें से जरूरी और काम की बातें छोटे-छोटे प्रकरण-ग्रन्थों और कुलकों आदि में गूँथ ली गई हैं। उनका उद्देश्य यही था कि बड़े-बड़े ग्रन्थ याद नहीं रखे जा सकते और छोटे ग्रन्थों या प्रकरणों को याद कर लेना सुगम होगा, अतः सारभूत बातें बतलाने व समझाने में सुविधा रहेगी। ऐसे बहुत से प्रकरण और कुलक अभी तक अप्रकाशित हैं। उनका संग्रह एव प्रकाशन बहुत ही जरूरी है—अन्यथा कुछ समय के बाद वे अप्राप्त हो जायेंगे। ऐसी रचनाएँ फुटकर पत्रों और संग्रह प्रतियों में पाई जाती हैं। हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची बनाते समय भी उनकी उपेक्षा कर दी जाती है। पर संग्रह प्रतियाँ और गुटकों की भी पूरी सूची बनानी चाहिए, जिससे प्रसिद्ध रचनाओं के अतिरिक्त अप्रकाशित एवं अज्ञात रचनाएँ कौन-सी हैं ? इसका ठीक से पता चल सके।

प्राकृत भाषा का 'स्तोत्र-साहित्य' भी उल्लेखनीय है, अतः प्रकरणों, कुलकों, स्तोत्रों, सुभाषित पद्यों के स्वतन्त्र संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित होने चाहिए। मैंने जैन कुलकों की एक सूची अपने लेख में प्रकाशित की थी, उसमें शताधिक कुलकों की सूची दी गई थी।

प्राकृत जैन-साहित्य को कई भेदों में विभक्त किया जा सकता है। जैसे—आगमिका, अंग-उपांग, छन्द, सूत्र-मूल आदि तो प्रसिद्ध हैं। दार्शनिक साहित्य में सम्मतिप्रकरण आदि अनेक ग्रन्थ हैं। औपदेशिक साहित्य में 'उपदेश माला' जैसे ग्रन्थों की एक लम्बी परम्परा है। प्रकरण साहित्य म जीव-विचार, नवतत्व, दण्डक, क्षेत्र समास, संघयणी, कर्मग्रन्थ आदि सैकड़ों प्रकरण ग्रन्थ हैं। महापुरुषों स सम्बन्धित सैकड़ों चरित काव्य प्राप्त हैं। कथाग्रन्थ गद्य और पद्य में हैं। सैकड़ों छोटी-बड़ी कथाएँ स्वतन्त्र रूप से और टीकाओं आदि में पाई जाती हैं।

सर्वजनोपयोगी साहित्य में व्याकरण, छन्द, कोष, अलंकार आदि काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो का समावेश होता है। प्राकृत के कई कोष एवं छन्द ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। 'पाइय लच्छी नाममाला' और 'जयदामन छन्द' प्रसिद्ध हैं। अलंकार का एकमात्र ग्रन्थ 'अलकार दप्पण' जैसलमर भण्डार की ताड़-पत्रीय प्रति में मिला था, जिसे मेरे भतीजे भँवरलाल ने हिन्दी अनुवाद के साथ मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित करवा दिया है। भँवरलाल ने प्राकृत में कुछ पद्यों की रचना भी की है और जीवदया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण, नाना वृत्तक प्रकरण और बालबोध प्रकरण को भी हिन्दी अनुवाद सहित हमारे "अभय जैन-ग्रन्थालय" से प्रकाशित करवाया है। ठाकुर फेरू के 'धातोत्पति' 'द्रव्य-परीक्षा' और 'रत्न-परीक्षा' का भी उसने हिन्दी अनुवाद किया है। इनमें से 'रत्न-परीक्षा' तो हमारे "अभय जैन ग्रंथालय" से प्रकाशित हो चुकी है। 'धातोत्पति' यू. पी. हिस्टोरिकल जर्नल में सानुवाद डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के द्वारा प्रकाशित करवा दी है। 'द्रव्य-परीक्षा' सानुवाद टिप्पणी लिखने के लिए डॉ० दशरथ शर्मा को दी हुई है। इसी तरह कांगड़ा राजवंश सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण रचना का भी भँवरलाल ने अनुवाद किया है। उस पर ऐतिहासिक टिप्पणियाँ डॉ० दशरथ शर्मा लिख देंगे, तब प्रकाशित की जायेगी।

अनुपलब्ध प्राकृत रचनाएँ—प्राकृत का बहुत-सा साहित्य अब अनुपलब्ध है। उदाहरणार्थ—स्थानांगसूत्र में दश दशाओं के नाम व भेद मिलते हैं। उनमें से बहुत से ग्रन्थ अब प्राप्त नहीं हैं। इसी प्रकार नन्दीसूत्र में सम्यग् सूत्र और मिथ्या सूत्र के अन्तर्गत जिन सूत्रों के नाम मिलते हैं, उनमें भी कई ग्रन्थ अब नहीं मिलते हैं। जैसे—महाकल्प महापन्नवणा, विज्जाचारण, विणिच्छओ, आयविसोही, खुड्डिआविमाणपविभती, महल्लिया विमाण विभती, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाह-चूलिया अयणोववाए, वसणोववाए, गुयलोववाए, धरणोववाए, वेसमोववाए, वेलधरोववाए, देविंदोववाए, उट्ठाणसुयं, समुट्ठाणसुयं, नागपरियावणियाओ, आसीविसभावणाणं, दिट्ठिविसभावणाणं, सुमिणभावणाणं, महासुमिण-भावणाणं, तेयग्गिनिसग्गाणं। पाक्षिक सूत्र में भी इनका उल्लेख मिलता है। व्यवहार सूत्र आदि में भी जिन आगम ग्रन्थों का उल्लेख है, उनमें से भी कुछ प्राप्त नहीं हैं।

प्राकृत भाषा के कई सुन्दर कथा-ग्रन्थ जिनका उल्लेख मिलता है, अब नहीं मिलते। उदाहरणार्थ—पादलिप्तसूरि की 'तरंगवई कहा' तथा विशेषावश्यक भाष्य आदि में उल्लिखित 'नरवाहनयताकहा', मगधसेणा, मलयवती। इसी तरह ११वीं शताब्दी के जिनेश्वरसूरि की 'लीलावई-कहा' भी प्राप्त नहीं है। कई ग्रन्थ प्राचीन ग्रन्थों के नाम वाले मिलते हैं पर वे पीछे के रचे हुए हैं—जिस प्रकार 'जोणीपाहुड़' प्राचीन ग्रंथ का उल्लेख मिलता है, पर वह अप्राप्त है। प्रश्नश्रमण के रचित योनिपाहुड़ की भी एक मात्र अपूर्ण प्रति भाण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीटूट, पूना में सम्वत् १५८२ की लिखी हुई है। इसकी दूसरी प्रति की खोज करके उसे सम्पादित करके प्रकाशित करना चाहिए। प्रश्नव्याकरण सूत्र भी अब मूल रूप में प्राप्त नहीं है, जिसका कि विवरण समवायांग और नन्दी सूत्र में मिलता है। इसी तरह के नाम वाला एक सूत्र नेपाल की राजकीय लाइब्रेरी में है। मैंने इसकी नकल प्राप्त करने के लिए प्रेरणा की थी और तेरापन्थी मुनिश्री नथमल जी के कथनानुसार रतनगढ़ के श्री रामलाल जी गोलछा जो नेपाल के बहुत बड़े जैन व्यापारी हैं, उन्होंने नकल करवा के मँगवा भी ली है। पर अभी तक वह देखने में नहीं आई अतः पाटण और जैसलमेर भण्डार में प्राप्त जयपाहुड़ और प्रश्नव्याकरण से वह कितनी भिन्नता रखता है ? यह बिना मिलान किये नहीं कहा जा सकता।

पंजाब के जैन भण्डारों का अब रूपनगर दिल्ली के श्वेताम्बर जैन मन्दिर में अच्छा संग्रह हो गया है, उनमें शोध करने पर मुझे एक अज्ञात बिन्दूदिशासूत्र की प्रति प्राप्त हुई है। फिर इसकी एक और प्रति विनयचन्द्र ज्ञान-भण्डार जयपुर में भी मिली है। मैंने इस अज्ञात सूत्र के सम्बन्ध में श्रमण के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जून ७१ अंक में संक्षिप्त प्रकाश डाला है। इसका सम्पादन करने के लिए मुनिश्री नथमलजी को इसकी कॉपी दी गई है। प्राकृत का यह सूत्र ग्रन्थ छोटा-सा है पर हमें इससे यह प्रेरणा मिलती है कि अन्य ज्ञान-भण्डारों में भी खोजने पर ऐसी अज्ञात रचनाएँ और भी मिल सकेंगी।

९वीं शती के जैनाचार्य बप्पभट्टिसूरि के 'तारागण' नामक ग्रन्थ का प्रभावक-चरित्र आदि में उल्लेख ही मिलता था पर किसी भी भण्डार में कोई प्रति प्राप्त नहीं थी, इसकी भी एक प्रति मैंने खोज निकाली है। वैसे बहुत वर्ष पहले इसकी यह प्रति अजीमगंज में यति ज्ञानचन्द जी के पास मैंने देखी थी पर फिर प्रयत्न करने पर भी वह मिल नहीं सकी थी। गतवर्ष अचानक बीकानेर के श्रीपूज्यजी का संग्रह जो कि राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान की बीकानेर शाखा में दे दिया गया है, उसमें यह प्रति मिल गई, तो उसका विवरण मैंने 'वीरवाणी' में तत्काल प्रकाशित कर दिया। उसकी रचना पढ़ते ही मुझे डा० ए० एन० उपाध्याय ने पत्र लिखा और उन्होंने फोटो-प्रति करवा ली है। इसी तरह ३० वर्ष-पूर्व भारत के प्राकृत जैनेतर कामशास्त्र की एक भाग अपूर्ण प्रति मुझे अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में प्राप्त हुई थी। प्राकृत भाषा के इस एकमात्र कामशास्त्र का नाम है 'मदनमुकुट'। यह गोसल ब्राह्मण ने सिन्धु के तीरवर्ती माणिक महापुर में रचा था। इसका विवरण मैंने तीस वर्ष पहले "भारतीय विद्या" वर्ष २, अंक २ में प्रकाशित कर दिया था। उस समय की प्राप्त प्रति में तीसरे परिच्छेद की पैंतीस गाथाओं तक का ही अंश मिला था। अभी दो-तीन वर्ष पहले जब मैं ला० द० भारतीय संस्कृति विद्या-मन्दिर, अहमदाबाद का संग्रह देख रहा था तो मुझे इसकी पूरी प्रति प्राप्त हो गई, जो सम्वत् १५६९ की लिखी हुई है। इसके अनुसार यह प्राकृत कामशास्त्र छः परिच्छेदों में पूर्ण होता है। जैनेतर कवि के रचित प्राकृत के इस एकमात्र कामशास्त्र को शीघ्र प्रकाशित करना चाहिए।

प्राकृत की भाँति अपभ्रंश साहित्य का कई दृष्टियों से बहुत ही महत्व है, पर अभी तक इस दृष्टि से अध्ययन एवं मूल्यांकन नहीं किया गया है। अन्यथा जिस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति, साहित्यिक परम्परा और भाषाविज्ञान की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन किया गया व किया जाता रहा है, उसी तरह प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य का भी होता है। जैसा कि पहले बतलाया गया है, लोक भाषाओं का उत्स प्राकृत भाषा में ही है। हजारों लोकप्रचलित शब्द, प्राकृत से अपभ्रंश में होते हुए वर्तमान रूप में आये हैं और कई शब्द तो ज्यों-के-त्यों वर्षों से प्रयुक्त होते आ रहे हैं। कई व्याकरण के प्रत्यय आदि भी प्रान्तीय भाषा में प्राकृत से सम्बन्धित सिद्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में अभी एक विस्तृत निबन्ध 'श्रमण' में छपा है। 'जैन भारती' में प्रकाशित तेरापन्थी साध्वी के लेख में और पं० बेचरदास जी आदि के ग्रन्थों में ऐसे सैकड़ों शब्द उद्धृत किये गये हैं, जिनका मूल संस्कृत में न होकर प्राकृत में है। जैन-आगमों में प्रयुक्त हजारों शब्द सामान्य परिवर्तन के साथ आज भी प्रान्तीय भाषाओं में बोले जाते हैं।

प्राकृत जनभाषा थी, इसलिए जनता में प्रचलित अनेक काव्य विधाएँ एवं प्रकार अपभ्रंश और प्रान्तीय भाषा में अपनाये गये। सैकड़ों व हजारों कहावतें एवं मुहावरे भी प्राकृत ग्रन्थों में मिलते हैं एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज भी लोकव्यवहार में प्रचलित हैं। प्राकृत ग्रंथों की कहावत जो राजस्थान में अब भी बोली जाती हैं, उनके सम्बन्ध में डा० कन्हैयालाल सहल का शोध-प्रबन्ध द्रष्टव्य है।

प्राकृत साहित्य का सांस्कृतिक महत्व सर्वाधिक है। क्योंकि जनजीवन का जितना अधिक वास्तविक चित्रण प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य में मिलता है, उतना संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। क्योंकि संस्कृत के विद्वान अधिकांश राज्याश्रित एवं नगरों में रहने वाले थे अतः गाँवों और साधारण नागरिकों का स्वाभाविक चित्रण वे अधिक नहीं कर पाये। अलंकारों आदि से संस्कृत महाकवियों ने अपने काव्यों को बोझिल बना दिया, क्योंकि उनका उद्देश्य पांडित्य-प्रदर्शन ही अधिक रहा। जबकि प्राकृत साहित्य के प्रधान निर्माता जैनमुनिगण, गाँवों में और जनसाधारण में अपने साहित्य का प्रचार अधिक करते रहे हैं, इस दृष्टि से लोकरुचि को ध्यान में रखते हुए लोक-कथाओं, दृष्टान्तों को सरल भाषा में लिखने का प्रयास करते थे। जिससे साधारण लोग भी अधिकाधिक लाभ उठा सकें। डा० मोतीचन्द्र जी आदि ने प्राकृत साहित्य की प्रशंसा करते हुए कुवलयमाला आदि का सांस्कृतिक महत्त्व बहुत अधिक बतलाया है। अतः भारतीय जन-जीवन और लोकप्रचलित रीति-रिवाज, विश्वास आदि के सम्बन्ध में प्राकृत साहित्य से बहुत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है।

बहुत कम लोगों को यह मालूम होगा कि मध्यकाल में संस्कृत एवं लोक-भाषाओं का इतना अधिक प्रभाव बढ़ जाने पर भी प्राकृत साहित्य के निर्माण की परम्परा निरन्तर चलती रही है, किसी भी शताब्दी का कोई चरण शायद ही ऐसा मिले जिसमें थोड़ी-बहुत प्राकृत रचनाएँ न हुई हों, वर्तमान में भी वह परम्परा चालू है। वर्तमान आचार्य 'विजयपद्मसूरि' ने प्राकृत में काफी लिखा है। विजयकस्तूरि-सूरि ने भी कई संस्कृत ग्रन्थों को प्राकृत में बना दिया है। तेरापन्थी मुनिश्री चन्दनमुनि जी रचित संस्कृत रयणवाल कहा अभी-अभी प्रकाशित हुई है और जयाचार्य का प्राकृत जीवनचरित्र जैन भारती में निकल रहा है। और भी कई साधु-साध्वी प्राकृत में लिखते हैं तथा भाषण देते हैं और प्राकृत के अभ्यास में निरन्तर लगे हुए है। पर अभी कोई ग्रन्थ ऐसा नहीं लिखा गया जिसमें प्रत्येक शताब्दी में बनी हुई रचनाओं की काल क्रमानुसार सूची दी गई है। मेरी राय में ऐसा एक ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहिए। जिससे ढाई हजार वर्षों की प्राकृत साहित्य की प्रगति और अविच्छिन्न-प्रवाह की ठीक जानकारी मिल सके।

प्राकृत के मध्यकालीन बहुत से ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। उनके प्रकाशन की योजना बनानी चाहिए। कुछ प्राकृत साहित्य परिषद से प्रकाशित हुए हैं। पर मेरा सुझाव यह है कि सबसे पहले प्राकृत की छोटी-छोटी रचनाएँ जितनी भी हैं, उनका संग्रह काव्यमाला संस्कृत सिरीज की तरह प्रकाशित किया जाये। अन्यथा वे थोड़े समय में ही लुप्त हो जायेंगी। अभी तक न तो उनकी जानकारी ही ठीक से प्रकाश में आई है, न उनके संग्रह ग्रन्थ ही अधिक निकलते हैं। १२वीं शताब्दी से ऐसी अनेक संग्रह प्रतियाँ मिलने लगती हैं और फुटकर ग्रन्थ भी हजारों मिलते हैं। जो अद्यावधि सर्वथा उपेक्षित-से रहे है।

प्राकृत से अपभ्रंश और उससे प्रान्तीय भाषाएँ निकलीं यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि परवर्ती हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती रचनाओं में उन रचनाओं की भाषा को कवियों ने स्वयं प्राकृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बतलाया है। वहाँ प्राकृत शब्द का अर्थ जन-भाषा ही अभिप्रेत है। अपभ्रंश के दिगम्बर चरित-काव्य तो कुछ प्रकाशित हुए हैं और उनकी जानकारी भी ठीक से प्रकाश में आई है पर श्वेताम्बर अपभ्रंश रचनाओं का समुचित अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया है। जितनी विविधता श्वेताम्बर अपभ्रंश साहित्य में है, दिगम्बर अपभ्रंश साहित्य में नहीं है। अत: हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती काव्य-रूपों या प्रकारों का अध्ययन करते समय मैंने प्राय: सभी की परम्परा अपभ्रंश से जोड़ने या बतलाने का प्रयत्न किया है। विविध विधाओं एवं प्रकारों की मूल अपभ्रंश रचनाओं का संग्रह भी प्रकाशित किया जाना आवश्यक है। हमने ऐसी कई रचनाएँ अपने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, दादाजिनदत्तसूरि, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि आदि ग्रन्थों में तथा विविध लेखों में प्रकाशित करने का प्रयास किया है। हमारा अभी एक ऐसा संग्रह ग्रंथ ला० द० भारतीय संस्कृति विद्या-मन्दिर अहमदाबाद से छप रहा है। इससे प्राचीन काव्य-रूपों और भाषा के विकास के अध्ययन में अवश्य ही सहायता मिलेगी।

प्राकृत भाषा का साहित्य बहुत ही विशाल है। ज्यों-ज्यों खोज की जाती है, नित्य नई जानकारी मिलती रहती है। अभी-अभी हमें भद्रबाहू की अज्ञात रचनाएँ मिली हैं, कई ग्रंथों की अपूर्ण एवं त्रुटित प्रतियाँ मिली हैं, आवश्यकता है प्राकृत भाषा एवं साहित्य सम्बन्धी एक त्रैमासिक पत्रिका की, जिसमें छोटी-छोटी रचनाएँ व बड़े ग्रंथों की जानकारी प्रकाश में लाई जाती रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org